

सत्कार्यवाद एक समीक्षात्मक अध्ययन

प्रदीप तिवारी

Sanskrit Dept. Mithila Sanskrit Research Institute, Darbhanga, Bihar, India

प्रस्तावना

सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद का सिद्धान्त सर्वाधिक महत्त्व रखता है, क्योंकि इसी पर सांख्य दर्शन का तत्त्व-ज्ञान आधारित है। इसके द्वारा प्रमेय की सिद्धि की गयी है। 'सांख्यकारिका' के रचयिता ईश्वरकृष्ण ने इसकी स्थापना निम्नलिखित कारिका द्वारा की है—

असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाऽभावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम् ।¹

(1) असदकरणात्—

कार्य अपने कारण में पहले से ही विद्यमान रहता है। कारण से किसी नवीन कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि असत् से कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। सत् से ही सत् की उत्पत्ति देखी जाती है। इस प्रकार कार्य उत्पन्न या व्यक्त होने पर तो हमारे सामने प्रत्यक्ष हो ही जाता है, इसके पूर्व भी वह अव्यक्त रूप में अपने कारण में विद्यमान रहता है, यथा सूक्ष्म रूप में मिट्टी में घट पहले से रहता है। प्रत्येक वस्तु की तीन अवस्थाएँ होती हैं— भूत, भविष्यत् और वर्तमान। जब वस्तु अर्थात् मिट्टी को वर्तमान अर्थात् घट अवस्था में लाते हैं तो उसका भूत और भविष्य अर्थात् मिट्टी रूप दब जाता है। जब वस्तु को भूत दशा में अर्थात् घट को फोड़कर मिट्टी रूप में लाते हैं, तब उसकी वर्तमान अर्थात् घट अवस्था दब जाती है। प्रत्येक वस्तु दो अवस्थाओं अर्थात् भूत और भविष्य में कार्य अर्थात् उपयोग योग्य नहीं रहती। इन दो दशाओं में वह सूक्ष्म और अनुपयोगी रहती है। इसप्रकार नवीन वस्तु का निर्माण नहीं होता, अपितु उसे वर्तमान रूप में अर्थात् व्यक्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

सांख्य मत के अनुसार किसी वस्तु की नवीन उत्पत्ति नहीं होती तो उसका नाश भी नहीं होता। केवल वस्तु की अवस्था अर्थात् भूत, भविष्य, वर्तमान का परिवर्तन हो जाता है। जिसे हम वस्तु अर्थात् घट का नाश अर्थात् फूटना कहते हैं, वह उसका रूप-परिवर्तन है। वह घट नाश के बाद पुनः भूतरूप अर्थात् मिट्टी रूप, जो कि उसकी कारण दशा है, में आ गया। इस प्रकार घट अपने उपादान कारण मिट्टी में भविष्य है, सूक्ष्म है। दूध का दही रूप में परिणत हो, उसका नाश नहीं, अपितु दूध की दशा अर्थात् रूप का परिवर्तन मात्र है। आतान-वितान क्रिया के द्वारा तन्तु को पट रूप में ला देना कार्य है, किन्तु यह कार्य अर्थात् पट अपने कारण तन्तु से भिन्न नहीं है। इस प्रकार कार्य सदैव सत् है, असत् का कभी निर्माण नहीं हो सकता। जो सत् है, वही कार्य रूप में व्यक्त होता है, उसका नाश नहीं होता। यह बात सांख्य दर्शन में 'सत्कार्यवाद' के द्वारा समझाई गयी है।

(2) उपादानग्रहणात्—

जो कारण अपने कार्य में मिला रहता है, वह उसका उपादान कारण कहलाता है। नैयायिक इसको समवायिकारण कहते हैं। यथा पट का उपादान अथवा समवायिकारण तन्तु है। तन्तु पट बनने पर भी नष्ट नहीं होता, अपितु पट के रूप में परिवर्तित हो जाता है। निमित्त कारण कार्य के बाद अलग हो जाता है, जैसे घट कार्य के

बनने पर कुम्हार निमित्त कारण उससे अलग हो जाता है। प्रत्येक कार्य का उपादान कारण भी निश्चित है। यथा— घट रूपी कार्य का उपादान कारण मिट्टी ही है, तन्तु नहीं। मिट्टी में ही घट है, अन्य पदार्थ में नहीं है। अतः कारण में ही कार्य रहता है, यह सिद्ध हुआ। यदि सबसे सबकी उत्पत्ति हो जाती तो बालू से भी तेल निकलना चाहिए, पानी से मक्खन और इसी प्रकार अन्य वस्तुएँ किसी भी कारण से उत्पन्न होनी चाहिए, किन्तु ऐसा होता नहीं है। जो जिसमें है, वह उसी में से प्रकट होता है, जो जिसमें नहीं है, वह उसमें से प्रकट नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि किसी निश्चित उपादान कारण में ही निर्धारित कार्य को व्यक्त करने की शक्ति है। अतः सिद्ध हुआ कि कारण में ही कार्य रहता है, यही सत्कार्यवाद है।

(3) सर्वसम्भवाऽभावात्—

सब कार्य सब कारणों से सम्भव नहीं हैं। इससे भी सत्कार्यवाद की सिद्धि होती है— "सर्वस्मात् सर्वसंभवस्याऽभावात् यद्वा एकरस्मात् सर्व सम्भवस्याभावादित्यर्थः, अन्यथैकमेव वस्तु सर्ववस्तु जननं समर्थं स्यात्।" कार्य-कारण का निश्चित सम्बन्ध है। यदि बिना सम्बन्ध के कारण कार्य को उत्पन्न करने लगे तो गाय के सींग से भी दूध उत्पन्न होना चाहिए। अर्थात् प्रत्येक कारण से प्रत्येक कार्य की उत्पत्ति होनी चाहिए, किन्तु संसार में ऐसा होता हुआ नहीं देखा जाता, अतः कार्य उत्पत्ति रूप से अपने कारण में विद्यमान है, इसे ही सत्कार्यवाद कहते हैं।

(4) शक्तस्यशक्यकरणात्—

हम संसार में देखते हैं कि जिस कारण में जिस कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति कार्य से पूर्वकाल में विद्यमान रहती है, उसी कारण से उस कार्य का जन्म होता है।

(5) कारणभावात्—

कार्य कारण स्वरूप होता है, उससे भिन्न नहीं, क्योंकि वस्तुतः वह कारण की ही परिवर्तित अवस्था है। अतः सिद्ध होता है कि कारण सत् है, तो कार्य भी सत् है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तावदर्शिभिः ।।²

अर्थात् 'असत्' वस्तु का तो अस्तित्व ही नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार संसार में असत् और सत् का यह तत्त्वज्ञान ज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।

सांख्य दर्शन के अनुसार कार्य और कारण में अभेद है और दोनों की सत्ता है, इसलिए तिल से तेल और धान से तण्डुल की उत्पत्ति होती है, अन्यथा नहीं। इस सम्बन्ध में सांख्य दर्शन के आचार्यों का कथन स्पष्ट है—

सदैव कार्यमुत्पत्तेः पूर्वकारकरूपकम् ।

आविर्भावतिरोभावौ जन्मनाशावुदीरितौ ।।³

सत्कार्यवाद की समीक्षा—

महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद सिद्धान्त को अत्यन्त सरल एवं व्यावहारिक स्वरूप प्रस्तुत किया है।

“सांख्य दर्शन में यही सिद्धान्त प्रकट किया गया है कि कोई नई वस्तु कहीं उत्पन्न नहीं होती। सब वस्तुएँ सर्वदा ही रहती हैं। वे कभी सूक्ष्म अर्थात् अव्यक्त अवस्था में और कभी स्थूल अर्थात् व्यक्त अवस्था में आ जाया करती हैं। यही अवस्था—परिवर्तन जगत् में हुआ करता है। नयी वस्तु न उत्पन्न होती है और न स्थित वस्तु का कभी विनाश ही होता है। इसे ही सांख्य दर्शन का सत्कार्यवाद कहा जाता है। इसके सांख्य दर्शन में कई दृष्टान्त दिये जाते हैं। तिलों में तेल पहले से है, उसे यन्त्र में पेलकर अभिव्यक्त कर दिया जाता है। दही में मक्खन व्याप्त है, उसे ही मथकर प्रकट कर दिया जाता है। जब आप किसी शिल्पी से राम या कृष्ण की या शेर, हिरण आदि की प्रतिमा बनाने को कहते हैं तो वह एक बड़ा पत्थर लेता है और अपने औजारों से पत्थर के अंशों को टाँचकर आपकी पसन्द की प्रतिमा को उसी पत्थर में से प्रकट कर देता है, बाहर से कुछ नहीं लाता। इससे यही सिद्ध होता है कि तेल, घृत, प्रतिमा आदि पहले से ही उन पदार्थों में विद्यमान थे, उन पर अन्य अवयवों का एक आवरण पड़ा हुआ था। उस आवरण को हटाकर उन्हें प्रकट कर दिया गया, नयी वस्तु कोई नहीं बनायी गयी। इन्हीं दृष्टान्तों से सर्वत्र सत्कार्यवाद समझ लेना चाहिए।”

बौद्धों का शून्यवाद—

शून्यवादी बौद्ध असत् से सत् की उत्पत्ति मानते हैं। उनका कहना है कि कारण वस्तु से कार्य वस्तु की उत्पत्ति तभी होती है जब कारण वस्तु असत् अर्थात् विनष्ट हो जाती है। जब तक वह वस्तु सत् अथवा विद्यमान रहती है तब तक उससे कोई वस्तु उत्पन्न होती ही नहीं। बीज से अंकुर तभी उत्पन्न होता है जबकि बीज नष्ट हो जाता है। मृतपिण्ड से घट तभी निकलता है, जबकि मृतपिण्ड नष्ट हो जाता है। इससे अनुमान होता है कि कारण के नष्ट हो जाने पर ही कार्य उत्पन्न हो पाता है।

समीक्षा—

इस मत को मान लेने पर सबसे बड़ा दोष यह है कि यदि असत् एवं धर्मशून्य कारण से सुख—दुःख आदि उत्पन्न करने वाले शब्द—स्पर्शादि कार्य उत्पन्न होते हैं तो यह कैसे कहा जा सकता है कि असत् कारण भी सुखदुःखाद्यात्मक होगा? जो असत् ही है तो वह सुख—दुःख— मोहात्मक कैसे माना जा सकता है? लोक में प्रायः यह देखने को मिलता है कि जिस प्रकार का कार्य है उसी प्रकार का कारण होता है। यदि कार्य सत् है तो कारण भी सत् ही होना चाहिए। सत् और असत् में तादात्म्य की सिद्धि ही नहीं हो सकती। यदि असत् से ही सत् की उत्पत्ति मान ली जाय तब तो आकाश कुसुम से भी शहद प्राप्त किया जा सकता है और खरगोश के सींग से सींगी बाजा बनाया जा सकता है, किन्तु ऐसा कदापि संभव नहीं है, अतः यही मानना समीचीन है कि सत् कारण से ही सत् कार्य की उत्पत्ति होती है।

नैयायिकों का असत् कार्यवाद—

न्याय—वैशेषिक मतानुयायियों की मान्यता है कि परमाणु आदि में पूर्वतः अविद्यमान द्वयणुक आदि अभिनव कार्य उत्पन्न होते हैं। सांख्य और वेदान्त की भाँति ये कार्य का उपादान कारण नहीं मानते, समवायि कारण मानते हैं। पट की उत्पत्ति तन्तुओं से समवाय—सम्बन्ध से ही होती है। तन्तु में पट पहले से विद्यमान नहीं है, अपितु तन्तुओं में समवेत होने पर ही पट—रूप कार्य का आरंभ होता है। इसी प्रकार पट का रूप भी पटोत्पत्ति के साथ उत्पन्न

नहीं होता, अपितु प्रथम क्षण में पट निर्गुण ही उत्पन्न होता है, गुणादि धर्म तो उत्पत्ति के अनन्तर ही उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार सांख्य दर्शन परिणामवादी है, तो न्याय दर्शन आरंभवादी।

समीक्षा—

नैयायिकों यह भी दोषपूर्ण है। सत् कारण से असत् कार्य की उत्पत्ति मान लेने पर सत् और असत् में अभेद असंभव होगा। इस प्रकार कारण शब्द इत्यादि कार्य के रूप का नहीं होगा। ‘जैसा कार्य है, उसी प्रकार का कारण भी होगा’— यह अनुमान तभी सार्थक हो सकता है जब कार्य और कारण दोनों ही सत् हों। यदि कारण सत् है और कार्य असत् तो कारण के गुणों की कार्य में कैसे संभावना की जा सकती है? हाँ, सत् कारण से सत्कार्य की उत्पत्ति मान लेने पर यह संभावना सिद्ध हो जाती है। अतः न्याय—वैशेषिक मत से यह सिद्ध नहीं होता कि जगत् का कारण ‘प्रधान’ अर्थात् त्रिगुणात्मक है।

वेदान्त का विवर्तवाद—

अद्वैत वेदान्तियों के मतानुसार एकमात्र ब्रह्म ही सत् है, एवं शेष समस्त जगत् अज्ञानवश उसी में उसी प्रकार आरोपित या कल्पित है, जिस प्रकार शुक्ति में रजत अथवा रज्जु—खण्ड में सर्प। जैसे शुक्ति और रज्जु का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर उसमें रजत और सर्प की पूर्व प्रतीति मिथ्या या भ्रमात्मक लगती है, उसी प्रकार तत्त्व—ज्ञान के द्वारा माया का बन्धन अथवा आवरण हट जाने पर तत्त्व रूप ‘ब्रह्म’ में ज्ञानावस्था के पूर्व प्रतीत होने वाला समस्त जगत् नहीं प्रतीत होता। इस प्रकार यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म का विवर्त है, कार्य नहीं। एक तत्त्व का तत्त्वान्तर में परिणत होना ही कार्य या विकार कहलाता है और तत्त्व में अतत्त्व की प्रतीति विवर्त कहलाती है, जैसा कि ‘पञ्चदशी’ में बतलाया गया है—

सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृतः।।४

समीक्षा—

वेदान्त के अनुसार शब्दादि प्रपञ्च को एक ही सत्—ब्रह्म का विवर्त (अतात्त्विक परिणाम) अर्थात् उसमें कियागया अध्यारोप मान लेने पर भी उक्त मत में ‘सतः सज्जायेत’ अर्थात् सत् से सत् की उत्पत्ति होती है— ऐसा सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह अद्वय सत्ता—ब्रह्म—तो प्रपञ्चात्मक नहीं है अपितु ‘अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्’ इत्यादि श्रुति के कथनानुसार प्रपञ्चविहीन है। अतः प्रपञ्चविहीन ब्रह्म से सुख—दुःख—मोहात्मक जगत् की उत्पत्ति कैसे संभव है। इस त्रिगुणात्मक जगत् का मूल कारण तो त्रिगुणात्मक ही होना चाहिए, वह मूल कारण ब्रह्म—व्यतिरिक्त प्रधान या मूल प्रकृति ही है। उसी सत् पदार्थ से इस त्रिगुणात्मक जगत् की उत्पत्ति होती है। यह जगत् ब्रह्म का विवर्त होने से असत्य नहीं, अपितु प्रकृति का कार्य होने से सत्य है, यह सांख्याचार्यों की मान्यता है। उपर्युक्त विवेचन से यह प्राप्त होता है कि सांख्य दर्शन का सत्कार्यवाद सर्वाधिक व्यावहारिक एवं ग्राह्यतम सिद्धान्त है।

संदर्भ—सूची

1. सांख्य0 का0 श्लोक—9
2. श्रीमद्भगवत्गीता योगाध्याय
3. सा0कौ0
4. वेदान्तसार